पंछी मेरे आस-पास

हमारे आस-पास चहचहाते पंछी जाने-अनजाने ही जीवन का हिस्सा बन जाते हैं। फिर तो उनकी कई अन्तरंग बातों का पता चलता है। और यदि तुमने सलीम अली या उन जैसे किसी पक्षी-लेखक की पुस्तक पढ़ी हो तो सोने में सुहागा। अब चूँकि मैंने वह किताब पढ डाली, तो पक्षियों को देखने में समय बिताना मेरा शौक बन गया। चाहे वह मामूली-सा लगने वाला अपना चिर-परिचित कौआ ही क्यों न हो !

क्या कभी ऐसा हो सकता है कि कोई कहे- "अहा, देखो कौआ !" और उसे देखने बीस-पचीस जनों का झुण्ड इकट्ठा हो जाए ! मेरे साथ एक बार ऐसा हुआ है।

सन् १९७४ में, मैं भारतीय प्रशासनिक सेवा में नई-नई भर्ती हुई थी और मसूरी में प्रशिक्षण चल रहा था। साल भर के कोर्स में पन्द्रह दिनों का एक प्रशिक्षण करना पड़ता है आर्मी अफसरों के साथ- वह भी सीमावर्त्ती इलाकों में। हमारे ग्रुप को भेजा गया था राजौरी-पूंछ इलाके में। जनवरी-फरवरी के दिन। कड़ाके की सर्दी। पहाड़ों पर चारों ओर बर्फ छाई हुई ! थोड़ी ही दूर सीमा के उस पार पाकिस्तानी सैनिकों की छावनियाँ। चौबीस घंटे कुहासे से भरा आकाश ! ऐसे में एक सुबह ऐसी आयी जब आकाश साफ खिला-खिला था, सूरज चमक-चमककर ठंड को कम कर रहा था और सामने एक निष्पर्ण ठूँठ पर कहीं से भटकते हुए तीन-चार कौवे आ बैठे थे। उनकी "काँव-काँव" सुनी तो होश आया कि अरे, कितने दिनों से तो इन्हें देखा ही नहीं था। अब हर कोई एक दूसरे को पुकार रहा था- "अरे, देखो कौवे !" फिर अगले एक घंटे तक हम उन्हें ब्रेड और न जाने क्या क्या डालकर लुभा रहे थे। उन कौवों को देखकर लगा, जैसे हम फिर से "मनुष्यों के बीच" लौट आए हों !

वैसे तो कौवे का घोंसला छोटे-मोटे सूखे तिनकों से और बड़ी बेतरतीबी से बनाया होता है, लेकिन अपने आँगन में मैंने कई बार देखा है कि वे बाँस या बेर के पेड़ से छोटी-छोटी हरी डंडियाँ भी तोड़ते हैं। पहले तो अपनी चोंच उस टहनी की जड़ में ऐसे मारते हैं जैसे कोई कुल्हाड़ी चला रहा हो, फिर उसे उल्टा-सीधा मरोड़कर उखाड़ लेते हैं। एक बार एक कौवे ने अपने पंजे में एक डंडी पकड़ रखी थी और दूसरी वह तोड़ रहा था। दूसरी भी टूटी तो उसने दोनों को जमीन पर रक्खा और बारी बारी से एक-एक को उठाकर जाने क्या क्या जाँच करता रहा ! बड़ी देर बार उसकी जाँच पूरी हुई और वह एक डंडी को चोंच में उठाए चल पड़ा। मुझे काफी देर तक उस दूसरी डंडी के "बरबाद" होने का दुख सालता रहा।